ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(6): 1363-1364
www.allresearchjournal.com
Received: 12-04-2017
Accepted: 04-05-2017

Pooja Sharma
M.phil scholar, University of Jammu, Jammu, Jammu and Kashmir, India

Corresponding Author:
Pooja Sharma
M.phil scholar, University of Jammu, Jammu, Jammu and Kashmir, India

'संस्मरण साहित्य में अभिव्यक्त दलित चेतना' (विशेष संदर्भः गुरूजी की खेती–बारी)

Pooja Sharma

प्रस्तावनाः

भारत के सामाजिक इतिहास में 'वर्ण व्यवस्था' शब्द बहुत प्रचलित है। 'वर्ण' शब्द के कई अर्थ निकलते हैं। तीन अर्थ इस प्रकार हैं – 'वर्ण' मतलब जाति, 'वर्ण' मतलब रंग, 'वर्ण' मतलब किसी भाषा में स्वर–व्यंजन। जब बात वर्ण व्यवस्था की आती है तो वर्ण व्यवस्था को मानने वाला वर्ण अर्थात् जाति के आधार पर ही मनुष्य की पहचान करता है। इसी वर्ण–व्यवस्था के आधार पर हिन्दु समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चार वर्णों में विभाजित किया गया। शुद्रों को सबसे निम्न माना गया। इनकी छाया का स्पर्श भी पाप समझा जाने लगा। निम्न समझी जाने वाली जाति के लोगों को दलित नाम दिया गया। दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। दलित का अर्थ अनुसूचित जातियों और जन–जातियों के दमन, शोषण में लिया जाने लगा। दलितों को हिन्दु समाज में सबसे निचले पायदान पर होने के कारण, सब मौलिक अधिकारों से उन्हें वंचित रखा गया। पहली बार डॉ. भीमराव अम्बेड़कर ने ही दलितों को उनकी गुलामी का एहसास करवाया। उन्होंने उन्हें शिक्षित व संघर्षशील होने के लिए प्रेरित किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि दलित भी अपने अधिकारों के प्रति जागरुक होने लगे। दलित चेतना के परिणामस्वरूप ही दलित साहित्य का जन्म हुआ। वर्तमान समय में दलित साहित्य ऐसा विमर्श बन चुका है। जिसका अध्ययन हिन्दी साहित्य को समझने के लिए बेहद जरूरी हो गया है। साहित्यकारों द्वारा रचित दलित साहित्य का मूल उद्देश्य है। दलित समाज की बुनियादी समस्याओं को जनता के समक्ष प्रस्तुत करना। दलित साहित्य अस्सी तथा नब्बे के दशक में उभरा एक साहित्यिक आन्दोलन है जिसमें बहुत से रचनाकारों ने हिस्सा लिया। आज साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं – कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध तथा अन्य गौण विधाओं संस्मरण, रेखाचित्र में भी दलित साहित्य लिखा जा रहा है। हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक विश्वनाथ त्रिपाठी ने अपने संस्मरण साहित्य में दलित जीवन की समस्याओं तथा चेतना का चित्रण किया है। मैंने अपने इस आलेख में विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'गुरूजी की खेती बारी' संस्मरण संग्रह में चित्रित 'वह छात्र जिसे दलित होने पर गर्व है' को आधार बनाया है।

स्वतंत्रता से पूर्व भारत में दलितों का शोषण–दमन चरम पर था। परंतु धीरे–धीरे लोगों में जागरुकता आती गई और वह पहले से ज्यादा अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो गए और मांग भी करने लगे। संविधान में भी उनके अधिकारों का प्रावधान मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जन्मी नई पीढ़ी मुख्यतः शहरों में रहने वाले लोगों के लिए भारत में दलित होने का अर्थ समझना बहुत मुश्किल है। क्योंकि स्वतंत्र भारत में दलित वर्ग में चेतना आ चुकी थी। लेखक ने अपने बचपन के दिनों का चित्रण किया है कि उस समय ब्राह्मण होना बहुत बड़ी बात थी। लेखक गांव से बलरामपुर पढ़ने जाते थे। पैदल चलते उन्हें कोई अनजान मिल जाता तो पूछता, "कौन जात हो? मैं कहता बामन। सुनते ही वह बोलता, पाय लागी बाबू या पास आकर पैर छूता।"[1] और अगर कोई दलित जाति बताता तो उसे गाली देते अर्थात उस समय जाति–पाति का बड़ा बोलबाला था। ब्राह्मणों को पूजनीय समझा जाता था। मनुष्य की अपनी कोई पहचान न होकर जाति ही उसकी पहचानसूचक होती। लेखक ने अपने बहुत सारे अनुभव इस संस्मरण के माध्यम से साझा किए हैं। उस समय आवाजाही के साधन कम या न के बराबर होने के कारण हमें पैदल ही हर जगह जाना पड़ता था। स्कूल भी बहुत दूर था और रास्ते के नाम पर कच्ची सड़कें। मैं थोड़ा आराम कर लेता, फिर चल लेता। वह बताते हैं कि एक बार उन्हें बहुत ज़ोर की प्यास लगी तो रास्ते में दूर–दूर तक कोई घर या कुआं नहीं था। थोड़ी दूर चलने पर एक घर मिला, तो थोड़ी राहत महसूस हुई, मैंने कहा पानी पिला दीजिए बहुत जोर से प्यास लगी है। तो उसके जाति पूछने पर जब मैंने बोला ब्राह्मण हूं, "उसने लोटा रोक लिया, बोला, पायलागी महाराज, तुम्हें हम पानी नहीं पियाय सकित। मैं दलित हूँ।"[2]

लेखक कहते हैं कि मेरे बहुत कहने पर भी उसने मुझे पानी नहीं पिलाया यही हमारे भारतीय समाज की विडम्बना है। सदियों से चली आ रही यह प्रथा आज भी चलन में है विशेषकर गांवों में। इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि उस दौर में इस प्रथा ने निम्न वर्ग के लोगों के दिलो दिमाग पर इस तरह काबू कर लिया था कि उन्हें लगता था कि अगर वह किसी ब्राह्मण को स्पर्श कर लेते हैं या फिर पानी ही पिला देते हैं तो उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। उस समय दलितों के बच्चे स्कूलों में कम दिखाई पड़ते। अगर कुछ पढ़ने की इच्छा से स्कूल आने की हिम्मत करते तो शिक्षक उन्हें मार–पीट कर भगा देते, "तुम सरऊ पढ़ोगे तो दूध कौन दुहेगा? या हजामत कौन बनाएगा? आदि।"[3]

स्वतंत्रता के बाद स्थितियों में थोड़ा परिवर्तन होने लगा। दलित छात्र–छात्राएं भी पढ़ने–लिखने में दिलचस्पी दिखाने लगे,जो अपने आपमें स्वर्ण कहलाने वाले लोगों को खटक भी रहा था, "विश्वविद्यालय में सवर्ण अध्यापकों में उस समय तक उनके प्रति या तो तिरस्कार का भाव होता था या दया का।"[4] लगभग आठवें दशक में दिल्ली विश्वविद्यालय मे दलित छात्रों की संख्या बढ़ने लगी। शुरू– शुरू में छात्र थोड़ा डरे–सहमे रहते। जाति बताने में भी संकोच करते। लेकिन धीरे–धीरे यह संकोच और डर आक्रामकता और आत्मविश्वास में बदलता गया। लेखक ने चन्द्रभान नाम दलित छात्र का चित्रण यहां किया है। जिसके व्यक्तित्व से वह बहुत प्रभावित थे, "ऐसा दलित व्यक्तित्व मैंनें तब तक नहीं देखा था, एक असीम, अकुंठ स्वाभिमान था। चन्द्रभान के रूप में मैंने ऐसा पहला व्यक्ति देखा, जिसे दलित होने का स्वाभिमान था।"[5] उस समय दलित छात्र या तो सहमे रहते या आक्रामक होते, लेकिन उसमें एक अजीब सा तेवर था। जिसकी मैं मन ही मन सराहना करता।

स्वतंत्र भारत में दलितों की शिक्षा का प्रावधान मिलता है। भारत सरकार ने पिछड़े समुदायों और जनजातियों के सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए सरकारी तथा निज़ी शैक्षिक संस्थानों में पदों तथा सीटों के कुछ प्रतिशत को आरक्षित रखा है, "लेकिन दलित छात्र–छात्राओं के सामने सिर्फ एक रास्ता रहता है कि वे दलित हैं, उन्हें आरक्षण मिला है।"[6] डॉ.भीमराव अम्बेड़कर ने ही इन पिछड़ी जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की थी जो वर्तमान समय में भी लागू है।

स्वतंत्रता पूर्व भारत में दलितों की सामाजिक व आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। स्वातन्त्रयोत्तर काल में इनकी स्थिति में थोड़ा–बहुत परिवर्तन तो जरूर आया। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम भक्तिकाल के कवियों द्वारा जाति–पाति का खण्डन किया गया। कबीर, रैदास, नाम देव आदि सन्त कवि जो निम्न जाति से संबंध रखते थे उन्होंने अपने काव्य में जातिवादी व्यवस्था की कटु आलोचना की है। आधुनिक काल में साहित्यकारों ने जातिवाद के मूल का सर्वनाश करने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की। उतर आधुनिक युग में दलितों में अस्तित्व बोध की भावना जागृत हुई और उन्होंने आप बीती को साहित्य में अभिव्यक्त किया। दलित साहित्य के संदर्भ में आलोचकों के दो मत प्रसिद्ध हैं – पहला वर्ग दलितों की पीड़ा को व्यक्त करने वाला साहित्य है । चाहे उसका लेखक सवर्ण ही क्यों न हो। दूसरा वर्ग इसके विपरीत दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखित साहित्य को ही दलित साहित्य मानते हैं। इनका मानना है सवर्णों ने उस पीड़ा को भोगा ही नहीं, तो वह उस अनुभूति को कैसे व्यक्त कर सकते हैं? दलित साहित्य कल्पना की वस्तु न होकर भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है।

निःसन्देह देश में जातिवाद की समस्या भयावह है। आज दलित साहित्य रूढ हो चुकी जातिवादी सामाजिक संरचना को बदलने की कोशिश में है। आज वह अपनी खोई हुई अस्मिता को वापस पाने के लिए संघर्षरत है। वह भी समाज़ में स्वतंत्रता, समानता व सम्मान को प्राप्त करना चाहते हैं, जिसके वह हकदार हैं। अतः दलित साहित्य सहजता से एक उज्जवल भविष्य की ओर बढ़ रहा है।

संदर्भ

1. विश्नाथ त्रिपाठी, गुरूजी की खेती बारी, नई दिल्ली – राजकमल प्रकाशन, 2015, पृ. 108
2. वही, पृ. 109
3. वही, पृ. 110
4. वही, पृ. 110
5. वही, पृ. 111
6. वही, पृ. 110